शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अग्निशेखर के साहित्य में विस्थापन की वेदना

यशवंत काछी (शोधार्थी)
भाषा अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

विस्थापन से तात्पर्य किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपनी जन्मभूमि, अपनी संस्कृति, अपने परिवेश से उखाड़कर अनिश्चित स्थान पर अनिश्चित समय के लिए, बाहर निकाल फेंकना या खदेड़ना ही विस्थापन है। नौकरी में तबादले, विवाह के पश्चात् बेटी का पिता के घर से पति के घर जाना और किसी नई जगह की यात्रा करना भी एक प्रकार का विस्थापन ही है, जो एक सुरक्षित और स्वीकृत विस्थापन है। इसके बावजूद यह भी क्षणिक ही सही लेकिन थोड़ी पीड़ा जरूर देता है। यहाँ हम उस विस्थापन की बात कर रहे हैं, जो आरोपित किया जाता है, जो हठात् है, जो व्यक्ति का अपना चयन नहीं है, जो असुरक्षा और अनिश्चितता की संवेदना लेकर आता है जो दहशत और वहशत की जुगलबंदी का परिणाम है, जो भीतर की आस्था और विश्वास को तार-तार करता है, ऐसा विस्थापन निर्वासित जनों को असीम पीड़ा, दुःखदर्द और तकलीफ देता है। जब कोई समुदाय बलपूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित किया जाता है, तो वहाँ पर केवल उसकी जमीनें और घर ही नहीं छूटते हैं। उनके साथ छूट जाती हैं कई स्मृतियाँ और बहुत कुछ ऐसा जो दिखाई नहीं देता है परंतु उनके हृदय से जुड़ा होता है। जो दोबारा चाहकर भी फिर नहीं मिलता। विस्थापन के कारण उस समुदाय की संस्कृति, पहचान, अस्मिता और सम्मान सब कुछ मिट जाता है। जीवित रहते हुए मिटने की यह प्रक्रिया बहुत ही पीड़ादायी और कष्टकारी होती है और यह पीड़ा विस्थापित कश्मीरियों की ज्वलंत और अविस्मरणीय सच्चाई है। कश्मीर का गुजरा हुआ कल वहाँ की शांति पर अशांति के अतिक्रमण और आक्रमण कीएक दर्दनाक और लंबी दास्तान है। इसदास्तान को सुनकर और इसकी हृदयविदारक स्थिति को देखकर ऐसा लगता है, मानो हिमाद्रि श्रृंगों से हिम पिघलने पर कोई पानी से भरपूर नदी प्रवाहित नहीं होती है, बल्कि कोई लहू का दरिया ही इन आबसारों से निकलकर बहता हो। जाने कितने ही शासक बदले, शासन बदले, नीति-नियम बदले लेकिन यदि इतने समय में कुछ नहीं बदला, तो वह है यहाँ की रक्तिम नीति और अराजकता। वहाँ के भूमिपुत्रों को भूमिसात करने का जो दुष्चक्र19 जनवरी 1990को रचा गया, उस का शिकार हिंदू पंडितों का समुदाय ही हुआ। जिसकी कसक आज भी उनके दिल में है।अग्निशेखर जी के साहित्य में इसी विस्थापन की वेदना दृष्टव्य है। उन्होंने विस्थापन के जिस दर्द को सहा और भोगा है। उसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में परिलक्षित होती है। अग्निशेखर जी समकालीन समय के साहित्यकारों में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में दिखाई देते हैं। अग्निशेखर जी को वर्तमान में निर्वासित चेतना का और विस्थापन की वेदना का अग्रणी साहित्यकार माना जाता है।

बीज शब्द : *विस्थापन, जलावतनी, आतंकवाद, सांप्रदायिकता, अलगाववाद, संस्कृति।*

प्रस्तावना

कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के विरूद्ध समकालीन साहित्य में जो सबसे तीव्र और सशक्त स्वर जागृत करने वाले कवियों में निर्वासन चेतना की पंक्तियों की अग्रिम पंक्ति में खड़े कवि हैं अग्निशेखर।

अग्निशेखर जी के साहित्य में भारतीय संस्कृति, परंपराएँ, रीति-रिवाज, लोकगाथाएँ और मातृभूमि प्रेम अपने सर्वोत्कृष्ट और शालीन रूप में समाहित है। उनके साहित्य में कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की पीड़ा का यथार्थ चित्रण मिलता है, क्योंकि उन्होंने स्वयं भी इस वेदना को भोगा है।

अग्निशेखर के साहित्य में विस्थापन की वेदना

अग्निशेखर जी कश्मीर के प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकारों में एक विस्थापित कवि हैं। उन्होंने बचपन से ही निर्वासन का दर्द सहा है। जिस परिस्थिति और परिवेश में अग्निशेखर जी का जीवन बीता है, वह अत्यंत ही दुःखद और तकलीफदेह है। उन्होंने अपने जीवन में कई बार विस्थापन का दर्द सहा है, लगभग चार दफा उन्हें इस पीड़ा से गुजरना पड़ा है। वह इस विस्थापन के विरोध में एक तीव्र और तल्ख अभिव्यक्ति को सारी दुनिया के सामने पेश करते हैं। विस्थापन की पीड़ा अभी भी उनके मन को सालती है। यही कथा कश्मीर से बेदखल किये गए प्रत्येक कश्मीर पंडित की है। यह दर्द इसलिये और भी ज्यादा है क्योंकि यह विस्थापन एक देश की सरहदों के पार दूसरे मुल्क की सरहदों में नहीं था, प्रत्युत यह विस्थापन अपने ही देश में था। जिसकी स्मृति मात्र ही उन निर्वासित कश्मीरियों के मन में एक दुसाध्य दुःख का संचार कर देती है। इस मुआमले में सरकार भी कुछ नहीं करती है। इस स्थिति को चित्रित करते हुए अग्निशेखर जी कहते हैं :

“साँस लेने भर की जमीन
पैरों के नीचे नहीं मिल रही थी उसको
तंबु-मुहल्लों के गलियारे
सब ब्लॉक देखे उसने
पूछा हर किसी से उसने
अपना पता निर्वासन में
वे स्वयं थे लापता
अपने ही देश में पीड़ित
जनसंहार के
छूटे घरबार के
विपक्ष और सत्ता की बेरुखी
छदमों की बहार के।”[1]

कश्मीर में हुआ विस्थापन किसी एक व्यक्तिए एक हिंदू या एक परिवार का विस्थापन नहीं है, यह पूरे हिंदू समुदाय का ही विस्थापन है। 19 जनवरी 1990 की रात को जिसे कश्मीर के निवासी लोग ‘सर्वनाश की रात’ कहते हैं, को तमाम मस्जिदों से एक ही घोषणा हुई कि जहाँ भी काफिर हैं उन्हें कत्ल कर दिया जाए। यह निजामे मुस्तफा का कायदा है और उसके बाद में जो हिंदू समुदाय का हाल हुआ उसका दर्द, उसकी पीड़ा और उसकी टीस अभी भी उन कश्मीर निर्वासित कश्मीरी पंडितों और संपूर्ण हिंदू समुदाय पर आज भी है। शशिशेखर तोषखानी लिखते हैं, “सिकंदर बुतशिकन के नरसंहारों की स्मृति कश्मीरी भाषा की एक कहावत ‘कश्मीरी रूध का हाय गर’ अर्थात् कश्मीर में केवल ग्यारह घर ही बचे रहे। कश्मीरी पंडितों का वह पहला और 19 जनवरी 1990 को सातवाँ और सबसे बड़ा विस्थापन था।

'लिव, चलि, या गलिव' अर्थात् हममें मिल जाओ यानी 'इस्लाम स्वीकार करो, भागो या फिर नष्ट हो जाओ' कश्मीरी पंडितों के सामने जीने के तब ये तीन विकल्प रखे गए थे और फिर 1990 में भी।"[2]

विस्थापन की इसी पीड़ा की सच्चाई से रूबरू कराते हुए अग्निशेखर जी कहते हैं :

"बरसी थीं लाठियां पुलिस की
परसों शरणार्थी कैम्प के
राजमार्ग पर
हम माँग रहे थे पेयजल
बिजली
मर रहे थे हमारे बूढ़े
रो रहा थे बच्चे
स्त्रियाँ जो बचकर आई थीं
जिहादियों से
हाँफ रही थीं असहाय
अंधाधुंध दागे गये
अश्रुगैस के गोले
फट गया था मेरा भी सर
लगे थे चौदह टाँके।"[3]

बाहर से आये कुछ फ़िराकपरस्तों ने पैसे और आतंक के बल पर कश्मीर की साझा संस्कृति में दरार डाल दी। जिस कश्मीरियत की मिसाल पूरे भारतवर्ष में दी जाती थी, आज उसी की छाती में सांप्रदायिकता और आतंकवाद का खंजर घोंपकर उसे लहूलुहान कर दिया गया है। एक वर्ग को कश्मीर से पलायन करने के लिए मजबूर किया, तो दूसरे वर्ग के दहशत भरे माहौल और गरीबी की बेड़ियों में कैद कर दिया। यह दुख साझा है। इस यातना को भोगा दोनों समुदाय के लोगों ने परंतु कश्मीरी हिंदू सबसे अधिक प्रताड़ित हुआ। इस घटना का जिक्र अग्निशेखर जी ने अपनी कविता 'काला दिवस' में किया है। वे लिखते हैं :

श्सीढ़ियों पर घर की
फैल रहा है खून अभी तक
मेरी स्मृतियों में
गरजते बादलों
और कौंधती बिजलियों के बीच
स्तब्ध है
मेरी अल्पसंख्यक आत्मा
वहीं कहीं अधजले मकान के मलबे पर
जहाँ इतने निर्वासित बरसों की उगी घास में
छिपाकर रखी जाती हैं
पाकिस्तान से आई बंदूकें।"[4]

कश्मीर में शेख अब्दुल्ला से लेकर फारूख अब्दुल्ला तक के शासन काल में तीन बार राष्ट्रपति शासन लागू हुआ। सांप्रदायिकता अलगाववादी नीति और धर्मांधता का जहर घाटी में तेजी से फैला, फलस्वरूप कश्मीरी पंडितों का विस्थापन हुआ, जो एक अमानवीय घटना थी। इस संदर्भ में अग्निशेखर जी अपनी कविता 'जवाहर टनल' में कहते हैं :

"कानों में गूँज रही थीं
जेहादियों की गालियाँ
उनके उद्घोष
धमकियाँ
ठांय ठांय!!
गोलियों की अठखेलियाँ
हथगोले और बमों के अट्टहास
अल जेहाद!
अल जेहाद! अल जेहाद!"[5]

कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की यादें आज भी निर्वासित कश्मीरी पंडितों के मन के घावों को कुरेदती हैं। आज भी उस भयंकर विस्थापन की पीड़ा हृदय में एक फाँस सी गड़ती है और हृदय को कचोटती है। तत्कालीन समय की परिस्थिति अत्यंत ही भयावह थी। व्यक्ति और अभिव्यक्ति दोनों पर बहुत ही कड़ी पाबंदी लगा दी गई थी। जिन परिस्थितियों से गुजर कर यह जलावतनी हुई है। उसका क्विरण अग्निशेखर जी ने अपनी कविता '19 जनवरी 1990 की रात' में दिया है, वे कहते हैं :

"तहखाने में कोयले की बोरियों के पीछे
छिपाई गई मेरी बहनें
पिता बिजली बुझाकर घूम रहे हैं
कमरे में यों ही
रोने-बिलखने लगे हैं मोहल्ले के बच्चे
होंठ और किवाड़
दोनों हैं बंद
बाहर कोई भी निकले
शब्द या आदमी
दोनों को खतरा है।"[6]

प्रत्येक व्यक्ति का अपने जन्मस्थान और मातृभूमि के प्रति एक विशेष लगाव और प्रेम होता है। चाहे वह दुनिया के किसी भी कोने में रहेए लेकिन उसका जुड़ाव हमेशा अपनी मातृभूमि के प्रति बना ही रहता है और कहा भी जाता हैरू. जननी जन्मभूमि स्वर्गादपि गरियसी। अर्थात् माँ और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती हैं। कश्मीर से जलावतनी के शिकार हर व्यक्ति के हृदय में आज भी अपनी जन्मभूमि के प्रति अगाध स्नेह भरा हुआ है। वह किसी भी शर्त पर अपनी मातृभूमि जाना चाहते हैं और वहीं रहना चाहते हैं। लगातार के विस्थापनों से वे तंग आ गये हैं और अब वे अपनी जन्मभूमि में लौटना चाहते हैंए

भले ही इसका प्रतिफल कुछ भी हो। वे सबकुछ सहने को तैयार हैं। अब उनसे अपनी मातृभूमि की दूरी और जुदाई बर्दाश्त नहीं हो पा रही है। इस बात को स्पष्ट करते हुए अग्निशेखर जी कहते हैंर :

"अरे, करो मेरा अपहरण
ले जाओ मुझे अपने यातना शिविर में
कुछ नहीं कहूँगा मैं
करो जो कुछ भी करना है
मेरे शरीर के साथ
जिंदा जलाओ, काटो
उआ दफन करो कहीं मुझे
नदी के किनारे
बर्फीले पहाड़ों पर किसी गाँव में
या कस्बाई गली में
कहीं घूरे के नीचे
मैं तरस गया हूँ
अपनी जमीन के स्पर्श के लिए।"[7]

कश्मीरी पंडितों के विस्थापन की वेदना को उनके अतिरिक्त जो निर्वासन के कष्ट को भोगे हुए लोग थे के अलावा प्रखर और प्रबल रूप में अन्य साहित्यकारों ने उस रूप में साहित्य के पृष्ठों पर अंकित नहीं किया, जिस रूप में उन्हें इन लोगों की वेदना को उजागर करना चाहिए था। बहुत से साहित्यकार तो इस निर्वासन के मुद्दे पर बात करना और लिखना तो दूर, इसके बारे में सुनने से भी कतराते थे। जब कश्मीरी पंडितों का विस्थापन हुआ, तो उस समय कश्मीर के ही प्रमुख साहित्यकार और हिन्दी साहित्य जगत के प्रतिष्ठित साहित्यकार चुप्पी साधकर बैठ गए। उनकी कलम से इस जलावतनी के विरोध में एक भी शब्द प्रस्फुटित नहीं हुआ। जिन परिस्थितियों में एक साहित्यकार को अपना स्वर मुखर रखना था, ऐसे समय में कलमकार अपने कर्तव्यों से विमुख हो गए थे। हिजरत के दर्द में डूबे हुए कश्मीरियोंकी पीड़ा को व्यक्त करने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। एक तरफ सरकार मौन होकर तमाशा देख रही थी, तो दूसरी ओर अदीब भी बड़ी ही खामोशी से उस मातम का नजारा देख रहे थे। इस खौफनाक दौर में लोग एक ऐसे व्यक्तित्व की तलाश में थेए,जो कालिदास की तरह उनकी पीड़ा को व्यक्त कर सके। इस बात का जिक्र 'हम जलावतन' काव्य संग्रह में किया गया है। कवि अपनी कविता के माध्यम से अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं :

"सरल नहीं
करना शब्दित वेदनाओं को
काश पैदा हो कालिदास कोई
जो करता अनुभव युगों के
हादसे हमारे
दर्द हमारा पढ़ पाता

उन्हें देता वाणी
संभव करता साधारणीकरण उनका
ताकि बोझ मेरे मन पर
पाँचाल पर्वत जितना
होता हल्का३
काश३"[8]

कश्मीर के लोगों ने एक के बाद एक आतंकवाद, पीड़ाओं, जुल्मों और अत्याचारों के दंश सहे हैं, उनका विष आज भी उन लोगों के मन से नहीं उतरा है। इस जहर ने कई मासूम कश्मीरियों की जान ले ली। इस जहर का दुष्प्रभाव कश्मीर के मूल निवासी कश्मीरी पंडितों पर सबसे ज्यादा पड़ा। इस विषम गरल की ज्वाला ने कश्मीर की एक साझा संस्कृति को झुलसा दिया और दो समुदायों के बीच नफरतें पैदा कर दीं। इस ज्वाला को भड़काने का कार्य किया, आतंकवादी संगठनों और बाहरी आक्रमणकारी शक्तियों ने। इन लोगों ने भारतीय संस्कृति में एक-दूसरे समुदाय के प्रति जलन और भेदभाव के जो बीज बोये, वे आज बड़े होकर फल-फूल रहे हैं। जिस भारतीय संस्कृति का वृक्ष कश्मीर की घाटियों में पल्लवित था, वह समय और आतंकवाद के थपेड़ों से कुम्हलाकर सूख गया है। कश्मीर की घाटियों में जब-जब भी विस्थापन हुआ है तब-तब कश्मीरी पंडित ही इस हिजरत की जद में आये हैं। लेकिन आज भी कश्मीरी पंडितों को एक आशा की किरण की उम्मीद है कि किसी दिन तो वह समय आयेगा जब वे घर को लौटेंगे। आज भी विस्थापितों के दिल में एक आस है कि एक दिन ऐसी सुबह जरूर आयेगी। इस बात को समझाते हुए कवि कहते हैं :

"बढी मिहिरकुल की रक्त पिपासा
जुलचा की बालिग पौध हुई
सूख गई ललद्यद की शशिकल
शेख-उल-आलम ने चार (चिरार) तजा
बड़शाह की रूह भी काँप गई
कुदूस गोजवारी की गर्दन काटी
है वितस्ता विकृत हुई बहुत ही
हर विपदा में मेरी बलि चढ़ाई
यहाँ फैला कितना अंधकार है
कभी उजाला होगा क्या।"[9]

निष्कर्ष

जब कश्मीरी पंडितों का विस्थापन हुआ तो वह सभी जब अपनी जन्मभूमि को छोड़कर भाग रहे थे, तो उनके मन में एक यह भाव और तस्वीर थी कि चलो अपना भारत तो है। इस देश में बसने वाले लोग तो अपने हैं। चलो उन्हीं के साथ, उन्हीं के बीच रह लेंगे। किन्तु जब उन्होंने हकीकत को देखा कि यहाँ के लोग छद्म धर्मनिरपेक्षता के कारण सत्ता के लालच और मोह से ग्रस्त हैं, वामपंथ की विचारधारा में घिरे हैं और विदेशी साहित्य की नकल कर रहे हैं। अपने देश में घटित हो रही घटनाओं से उनका कोई

भी ताल्लुक नहीं है, तो उनके मन का दुख बढ़ता ही गया। निर्वासन की ऐसी विकट विभीषिका में भी उनके साथ कोई नहीं था। भारत के आम नागरिकों को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ा। इन सभी बातों और घटनाओं का प्रभाव कश्मीर की वादियों से उजड़ने के प्रभाव से कहीं अधिक मन को कचोटने वाला और मारक था। कश्मीर विस्थापन के दौरान जब कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के जख़्म नासूर बन गए और उनके दर्द और घुटन की पीड़ा असहनीय हो गई, तब अपनी व्यथा की अभिव्यक्ति उन्होंने स्वयं करने की ठानी। इन्हीं वेदनाग्रस्त लोगों के बीच से निकलकर अग्निशेखर जी ने अपने कष्टों, दुखों और यातनाओं को साहित्य के पृष्ठों पर उकेरा है। जिसका स्वर अत्यंत ही मर्मभेदी है। जिसमें प्रत्येक शब्द से निर्वासन की पीड़ा का दर्द झलकता है।

अग्निशेखर जी के साहित्य में कश्मीरी पंडितों के भयानक और भयावह विस्थापन की सच्चाई, कश्मीर के मूल निवासियों की हताशा और आकांक्षा एवं उनके संघर्ष की गाथाएँ हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अग्निशेखर जी ने अपने द्वारा भोगे गए यथार्थ की जो अभिव्यक्ति की है, वह अकेले उनकी ही नहीं बल्कि पूरे कश्मीर विस्थापित समुदाय की त्रासदी का परिचय देती है। अग्निशेखर जी का साहित्य कश्मीर से खदेड़े गये लोगों की वेदना का साहित्य है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 अग्निशेखर, नीलगाथा, प्रलेख प्रकाशन प्रा.लि. 2021, पृष्ठ 175

2 तोषखानी, डॉ. शशिशेखर, (जुलाई-सितंबर 2018), पत्रिका, साहित्य भारती, (विस्थापन की त्रासदी) संदर्भ कश्मीर विशेषांक, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृष्ठ 13

3 अग्निशेखर, नीलगाथा, प्रलेख प्रकाशन प्रा.लि. 2021, पृष्ठ 57

4 अनुवादक, त्रिवेदी पन्ना, अग्निशेखर, जवाहर टनल, आर.आर. सेठ, 2023, पृष्ठ 93

5 वही, पृष्ठ 29

6 Kavitakosh.Com, मुझसे छीन ली गई नदी मेरी, 20/05/2023, 6:30

7 Kavitakosh.Com, 20/05/2023, 6:32

8 संपा. अग्निशेखर, हम जलावतन, प्रलेख प्रकाशन प्रा.लि., 2021, पृष्ठ 61-62

9 वही, पृष्ठ 52-53